PUNE RESEARCH TIMES ISSN 2456-0960
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF CONTEMPORARY STUDIES VOL 9, ISSUE 1

विभिन्न सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे आधुनिक संगीत शिक्षाशास्त्र : एक विश्लेषण

प्रा. डॉ. वर्षा एस. आगरकर
सहायक प्राध्यापिका
संगीत विभाग
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
नागपूर. (महाराष्ट्र) भारत

सारांश:

संगीत दुनिया भर के लगभग सभी देशों की संस्कृतियों का एक अभिन्न अंग है। धार्मिक अनुष्ठानों, त्योहारों और समारोहों, नृत्यों, नाटकों, फिल्मों, कथा कार्यक्रमों, कुछ प्रकार के अभ्यासों, मनोरंजन जैसे विभिन्न सांस्कृतिक आविष्कारों को संगीत के साथ प्रस्तुत किया जाता है और यह संगीत उनके स्वाद और प्रभाव को बढ़ा देती है। स्कूल-कॉलेज के पाठ्यक्रम में संस्कृति के विभिन्न अंगों का अध्ययन किया जाता है, इसलिए स्वाभाविक है कि इसमें संगीत शिक्षा को महत्व मिले। चूंकि संगीत मुख्य रूप से श्रवण अनुशासन है, इसलिए इसकी अध्ययन प्रक्रिया में समर्पित श्रवण का अत्यधिक महत्व है। संगीत विशेषज्ञों और गुरुओं के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन के साथ-साथ, बीसवीं शताब्दी की इलेक्ट्रॉनिक क्रांति द्वारा उपलब्ध कराए गए तकनीकी उपकरणों ने

भी इसमें बहुत योगदान दिया। आधुनिक समय में इन तकनीकी उपकरणों की घर-घर संगीत पहुंचाने की क्षमता के कारण समाज में संगीत-साक्षरता, ज्ञान और रुचि बढ़ाने का काम बड़े पैमाने पर हो रहा है। इसी विचार को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत शोधपत्र मे आधुनिक संगीत शिक्षाशास्त्र का समाजशास्त्रीय दृष्टीकोन प्रस्तुत किया है।

बिज-शब्द: संगीत, शिक्षा, संस्कृति, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

प्रस्तावना:

भारतीय संगीत का उद्भव कब और कहाँ हुआ, इस पर विशेषज्ञों में मतभेद है। हालाँकि, प्राचीन हिंदू ग्रंथों में संगीत के विषय पर प्रचुरता से लिखा और चर्चा की गई है। इन प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन और शोध करने वाले विद्वानों के अनुसार, वैदिक छंदों का मधुर उच्चारण संगीत का सबसे आदिम और अविकसित रूप माना जा सकता है। कई शोधकर्ताओं का मानना है कि स्वर और श्रुति का विकास इसी पाठ से हुआ होगा। प्राचीन काल में इन वैदिक मन्त्रों के स्वर एवं लयबद्ध जप तीन स्वरों पर आधारित रहे होंगे और उन्हीं से सात स्वरों का विकास हुआ। उपलब्ध जानकारी से, ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक पाठ एक विशिष्ट और सटीक स्वर और लय में पढ़े जाते थे, शारंगदेव के संगीत रत्नाकर (सी. 1210-47) नामक एक मध्ययुगीन ग्रंथ में वैदिक पाठ से स्वर के विकास की विस्तृत चर्चा है। संगीत पर ऐसी टिप्पणी को एक मानक माना जाता है। वैदिक काल से लेकर मध्य युग तक भारतीय संगीत लगभग पूर्ण अवस्था में पहुँच गया। ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत का व्याकरण भी इसी काल में पूर्ण विकसित हुआ था। बाद में, मुस्लिम आक्रमण के बाद, मूल उत्तर भारतीय संगीत मध्य पूर्वी संस्कृति से प्रभावित हुआ और जिसे आज हम हिंदुस्तानी संगीत (उत्तर भारतीय) कहते हैं, उसका उद्भव और विकास हुआ। चूंकि मध्य युग के आक्रमणों ने दक्षिण भारत को अधिक प्रभावित नहीं किया, इसलिए वहां के संगीत ने अपने मूल

भारतीय चरित्र को बरकरार रखा है। इस संगीत को आज कर्नाटक संगीत कहा जाता है। चार वेदों में से एक प्राचीन ग्रंथ सामवेद में संगीत के विषय पर विस्तार से बताया गया है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन दिनों संगीत को मूलतः भक्ति और ईश्वर प्राप्ति का साधन माना जाता था। संगीत की आराधना करते समय मन को भगवान को प्रसन्न करने के लिए एकाग्र होना चाहिए, अन्यथा संगीत बजाना वास्तव में भगवान की सेवा करना है। संगीत में रागों के नामों पर विचार करने पर भी यह ध्यान में आता है कि भक्ति केवल प्रभु का स्मरण करके ही की जाती थी। साथ ही, यह भी देखा जा सकता है कि शंकर और कृष्ण का वर्णन कई खण्डों में किया गया है। शंकर, भैरव, दुर्गा, सरस्वती नाम इसके अच्छे उदाहरण हैं। संगीत में बंदिशों के जो वर्णन मिलते हैं उनमें विभिन्न रसोत्पत्तियों का निर्माण होता हुआ दिखाई देता है। इसका सौंदर्य रागों के अनुसार अर्थात् स्वरों की संरचना के अनुसार बारी-बारी से बदलता रहता है। इसमें खूबसूरती के कई रंग हैं. अर्थात जब शब्दों के साथ स्वरों का मेल होता है तो सौन्दर्य उत्पन्न होता है। इसी से भक्तिरस, शांतरस और करुणरस प्रकट होते हैं। इसका मतलब यह है कि संगीत का अभ्यास करना सौंदर्य पैदा करना और भगवान के साथ एकजुट होना है। यहाँ दार्शनिक विचार एकनिष्ठ होकर रियाज़ का अभ्यास करके मन की शांति प्राप्त करना है, अर्थात 'संगीत साधना' याने संगीत का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना।

संगीत घरांणा:

उत्तर हिंदुस्तानी संगीत में रागदारी प्रस्तुति की एक विशिष्ट शैली को मोटे तौर पर ' घरांणा ' कहा जाता है। प्राचीन काल में प्रतिभाशाली विद्वानों और कलाकारों द्वारा अपनी शैलियों में बनाई गई पद्धति का अनुसरण एक सतत परंपरा के रूप में किया जाता था और वह शैली गुरु के माध्यम से शिष्यों की अगली पीढ़ियों तक प्रसारित होती थी। स्वाभाविक रूप से, राग-प्रस्तुति के कई पहलुओं में एक निश्चित रूप विकसित हुआ और यही बाद में उन परिवारों की विशेषता बन गई। दूसरे शब्दों में,

घराणो का निर्माण संगीत शिक्षा की एक विशिष्ट पद्धति के माध्यम से हुआ था। इसलिए, भारतीय, विशेषकर हिंदुस्तानी संगीत शिक्षा और घरानों का उत्थान और विकास हमेशा एक-दूसरे से जुड़े रहे। घरानों के निर्माण में स्वर, ताल, लय, तारत्व, प्रस्तुति की संरचना आदि के आधार पर एक निश्चित बैठक का निर्माण किया जाता था। इस प्रकार की बैठक को पहले 'बानी' कहा जाता था। सोलहवीं शताब्दी तक बानी के ऐसे चार प्रकार विद्यमान थे। 'ध्रुपद' के प्राचीन और कुछ हद तक प्रतिबंधित गीत रूप से, ख्याल का एक स्वतंत्र और सुंदर रूप विकसित हुआ, जिसने स्वतंत्र प्रतिभा को अवसर दिया। उन्नीसवीं सदी में संपूर्ण भारत राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। विदेशी आक्रमण और फिर ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में प्रवेश आदि। किन कारणों से संगीत या किसी भी कला विधा के लिए स्थिति बहुत अनुकूल नहीं थी। इस काल में अनेक संस्थाओं ने प्रतिभाशाली कलाकारों को राजकीय आश्रय दिया। इन कलाकारों ने अपनी कला की साधना से शिष्यों का एक बड़ा परिवार भी तैयार किया और संगीत शिक्षा की परंपरा को अक्षुण्ण रखा। उस समय संचार के तीव्र साधनों और एक-दूसरे से संवाद करने में आने वाली कठिनाइयों के कारण इन कलाकारों की शैली सीमित रह गई और परिवारों की संगीत संबंधी पहचान निर्धारित हो गई। शुरुआती दिनों में ये कलाकार अपनी कला अपने बच्चों या रिश्तेदारों तक पहुँचाते थे। लेकिन बाद में कई 'गंडाबंध' शिष्य पैदा हो गए और वे अपनी गुरु-शिष्य परंपरा का प्रतिनिधित्व करने लगे। उससे यह कला विकसित हुई और प्रतिभाशाली शिष्य इसे और अधिक समृद्ध करने लगे। जिस प्रकार राजवंशों के विकास से एक स्वतंत्र शैली का विकास हुआ, उसका एक नुकसान एक प्रकार का बंधन था। कुछ कलाकारों या यहां तक कि गुरुओं के पूर्वाग्रह के कारण अन्य परिवारों या कलाकारों में कुछ अच्छा या अनुकरणीय है या नहीं, यह देखने की जिज्ञासा विकसित नहीं हो सकी। फिर भी, यह कहना होगा कि भारतीय संगीत घरानों के विकास के कारण फला-फूला।

गुरुशिष्य परंपरा:

भारतीय संगीत की मुख्य विशेषता यह है कि यह पूर्णतः स्वर-ताल-ताल पर आधारित है। इसका संरक्षण एवं प्रसारण पूर्णतः मौखिक माध्यम से होता है। राग का स्वरूप, उसकी सूक्ष्म विशेषताएँ, व्याकरण तथा लय एवं ताल का ज्ञान गुरु द्वारा शिष्य को चेहरे एवं स्वयं के द्वारा प्रदर्शित किया जाता था, इस प्रकार संगीत की विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली जाती थी, जिसे राग कहा जाता है। 'गुरु-शिष्य परंपरा'. यह परंपरा न केवल भारतीय संगीत की विशेषता थी बल्कि ज्ञान हस्तांतरण का एक महत्वपूर्ण और एकमात्र माध्यम भी थी। पहले के समय में शिष्य गुरुगृह में रहकर गुरु की सेवा करता था और गुरु शिष्य की योग्यता और श्रद्धा देखकर उसे अपना ज्ञान देते थे। निःसंदेह शिष्य को यह कठिन तपस्या गुरुगृह में रहकर ज्ञान प्राप्त करते हुए करनी पड़ती थी।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण:

एक नवीनतम आधुनिक दृष्टिकोण संगीत शिक्षा के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण है। जो छात्र संगीत का अध्ययन करने आते हैं वे सामाजिक-जातीय भिन्नताओं वाली विभिन्न पृष्ठभूमियों से आते हैं। यदि उन्हें उच्च मध्यवर्गीय संवेदनाओं से संस्कारित संगीत सिखाया जाएगा, तो उन्हें इसकी आदत नहीं होगी और संगीत शिक्षकों को भी छात्रों को लोकप्रिय और स्थापित संगीत सिखाने में कठिनाई होगी। हाल के वर्षों में, कुछ समाजशास्त्रियों ने यह स्थिति सामने रखी है कि सामाजिक-जातीय मतभेदों के साथ-साथ छात्रों की सांस्कृतिक विविधता और समृद्धि को ध्यान में रखते हुए, सभी प्रकार के मौखिक संगीत, विभिन्न देशों और संस्कृतियों के लोक संगीत-परंपराओं को शामिल किया जाना चाहिए। संगीत शिक्षा में और संगीत शिक्षा के पाठ्यक्रम को

तदनुसार पुनः डिज़ाइन किया जाना चाहिए। कोडैली का हंगेरियन लोक संगीत पर शोध और संकलन इस विचारधारा की नींव है। एक ही समय में, एक ही समाज में कई अलग-अलग प्रकार के संगीत एक साथ बजाए जा रहे हैं और उनमें से प्रत्येक का एक विशेष और अलग श्रोता है। यदि साझा संगीत-संस्कृति जैसी कोई चीज़ है, तो इसे रेडियो, रिकॉर्ड प्लेयर, टेलीविज़न जैसे मीडिया के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। उससे परे संगीत का विशाल क्षितिज है। तब संगीत शिक्षा के संदर्भ में आदिवासी जनजातियों के मौखिक संगीत की विविधता और प्रचुरता, लोक संगीत की विभिन्न परंपराओं पर विचार करना आवश्यक है। निस्संदेह, इस रुख में कुछ हद तक सच्चाई है।

संगीत शिक्षा में परिवर्तन:

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में तकनीकी प्रगति, बदलते सामाजिक जीवन आदि ने भी संगीत शिक्षा को प्रभावित किया। इन परिवर्तनों ने स्पष्ट रूप से पारंपरिक प्रणाली को भी प्रभावित किया, जो कुछ शताब्दियों पहले तक गुरुकुल-प्रणाली तक ही सीमित थी। संचार की सुगमता, संचार और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की उपलब्धता ने सभी कलाकारों-संगीतकारों को अन्य विधाओं के गायन-वादन को सुनने और सीखने का अवसर प्रदान किया है। भारतीय संगीत शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य परंपरा का अद्‌वितीय महत्व है। प्राचीन काल से ही इसका महत्व बरकरार है। लेकिन इतिहास और जीवनशैली में बदलाव के कारण इस परंपरा को उसके मूल रूप में जारी रखना कई मायनों में मुश्किल हो गया। इसके अलावा संगीत में नये चलन ने भी हमारे शास्त्रीय संगीत पर कई तरह से आक्रमण किया है। फिर भी उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग करके परंपरा को सुरक्षित रखना संभव है। आज के परिदृश्य में, भारतीय शास्त्रीय संगीत को सुनने की सुविधा कई सुविधाओं के माध्यम से मिलती है। जैसे, फोनोग्राफ, रेडियो, टेलीविजन, डी. वी डी आदि. साथ ही संगीत पर सेमिनार, प्रदर्शन, कार्य अनुभव आदि। व्यवस्थित शैक्षिक व्यवस्था के इस काल में सहायक सामग्री का प्रयोग व्यापक रूप से

होने लगा है। आदर्श रूप से संगीत, समाचार पत्र समीक्षा आदि पर संकलन। लिखित मीडिया के माध्यम से कला के विषय पर बहुत सारे लेखन ने आज की युवा पीढ़ी को अध्ययन करने का एक बड़ा अवसर दिया है। ऐसे में नई शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था और अनुप्रयोग, साथ ही उपयोगी तकनीकी उपकरणों और गुरु-शिष्य परंपरा की उपयुक्त विशेषताओं को अपनाना, आज की भारतीय संगीत-शिक्षा प्रणाली को अधिक गतिशील, बुद्धिमान और समग्र बना सकता है। आधुनिक युग में इन सभी विकासों की पृष्ठभूमि में, संगीत शिक्षा के पुनर्गठन, अच्छे कलाकारों की मौलिक मदद, सही उपकरणों का सही तरीके से उपयोग और उसमें अध्ययन के प्रति समर्पण और निष्ठा की मदद से विषय, संगीत शिक्षा की इस परंपरा को आधुनिक तरीके से निश्चित रूप से संरक्षित किया जा सकता है और ऐसा प्रयास संगीत के वरिष्ठ विशेषज्ञों द्वारा किया जा रहा है।

समारोप:

परिवर्तन की दृष्टि से 20 वीं सदी में विकसित प्रौद्योगिकी ने मनुष्य के हाथों में मौजूद हथियारों को वैश्विक बना दिया। इसीलिए इसके प्रभाव इतने गहरे और दूरगामी थे। कंप्यूटर प्रौद्योगिकी में प्रगति ने इस परिवर्तन को तेज कर दिया और एक नई वैश्विक संस्कृति और सभ्यता हर जगह फैल गई। प्राचीन काल से लेकर आज तक संगीत के विकास में समय-समय पर अनेक बाधाएँ आई हैं, लेकिन अपनी शक्ति और क्षमता के कारण संगीत कभी धीरे-धीरे तो कभी तेजी से विकास पथ पर आगे बढ़ा है। आधुनिक समय में संगीत तेजी से प्रगति कर रहा है। आज हजारों विद्यार्थी संगीत सीख रहे हैं। संगीत शिक्षकों को भी समाज में पूरा सम्मान मिलता है। संगीत के व्यावहारिक और सैद्धांतिक पहलुओं पर कई किताबें लिखी गई हैं। परिणाम स्वरूप आज भारतीय संगीत न केवल भारत में बल्कि विश्व के कोने-कोने में फैल रहा है।

संदर्भ-सूची:

- आठवले, पं. वि. रा (२००८) : "नादचितन', संस्कार प्रकाशन, मुंबई, प्रथम संस्करण
- कुमारी, डॉ. शिप्रा (२०११) : "भारतीय संगीत में सौंदर्य और अध्यात्म", मनीष प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण
- कौर, डॉ. भगवंत (२००२): "संगीत मार्ग प्रदर्शन", निर्मल पब्लीकेशन्स, दिल्ली प्रथम संस्करण
- गर्ग, डॉ. लक्ष्मीनारायण (१९७८) : "संगीत निबंधावली', संगीत कार्यालय, हाथरस,तृतीय संस्करण
- गुणे, पं. नारायण लक्ष्मण : "संगीत प्रवीण दर्शिका', (भाग १ से ४) संगीत प्रेस,इलाहाबाद